शोध पत्र—चित्रकला ललित कला

SEPT—2009

कला

डॉ. राकेश कुमार सिंह

प्रवक्ता चित्रकला ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

वर्तमान युग में ''कला'' शब्द के द्वारा जिस जिस अर्थ का बोध होता है उसकी प्रधानतः दो परम्परायें हैं । पहली भारतीय और दूसरी यूरोपीय । कला के आधुनिक भारतीय अर्थ–बोध की परम्परा भारतीय कम और विदेशी अधिक है। उचित यह है कि दोनों ही परम्पराओं के समक्ष अनुशीलन द्वारा कला बोध को एक नवीन दिशा दी जाये। 'कला' अपने आप में एक संस्कृत शब्द है जिसका मूल आधुनिक विचारकों ने कई प्रकार से निर्धारित करने का प्रयत्न किया है । इसकी उत्पति निम्नलिखित धातुओं से मानी गयी है

कल = सुन्दर, मधुर, कोमल, सुखद

कल = शब्द करना, बजना, गिरना

क = आनन्द

उपर्युक्त धातुओं के आधार पर 'कला' शब्द का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में लगभग बीस अर्थों में हुआ है । इसमें किसी वस्तु का सोलहवां अंश, कोई छोटा अंश, कपट तथा कार्य करने में अपेक्षित चातुर्य इत्यादि ये अर्थ प्रमुख हैं। इतने अर्थों के साथ 'कला' शब्द जोड़ने के पीछे कला के अर्थ–विस्तार को आधुनिक दृष्टि से पूर्णतम बनाने की भावना परिलक्षित होती है किन्तु वस्तु स्थिति यह है कि वैदिक युग से लेकर मध्यकाल पर्यन्त कला के अतिरिक्त शिल्प शब्द का प्रयोग भी होता रहा है और दोनों ही शब्दों का परम्परा में बंधा हुआ अर्थ कतिपय क्रियाओं अथवा वस्तुओं की सूची का बोध कराता रहा है।

कामसूत्र में 64 कलायें मानी गयी हैं, ललित विस्तार में 86 एवं प्रबन्ध कोश में 72 इन सबमें कामसूत्र की सूची को ही कालान्तर में विशेष महत्त्व मिला और कलाओं को कामार्थ संश्रयाः मानते हुए उन्हें एक प्रकार का चातुर्यपूर्ण कार्य माना गया । यह परम्परा उस दार्शनिक मतवाद से सर्वथा भिन्न है जिसमें कला को ''महामाया का चिन्मय विलास'' समझा एवं माया के पांच कंचुको–काल, नियति,राग, विद्या और कला में से एक माना गया है । जब तक ये कंचूक मनुष्य को अपने आप तक ही सीमित रखते हैं ये बंधन बन जाते हैं परन्तु जब ये अपने ऊपर वाले तत्त्व की ओर उन्मुख करते हैं तो मुक्ति के साधक बन जाते हैं । कला को कारीगरी अथवा कौशल ही माना जाता रहा है ।

शिल्प एवं कला दोनों शब्दों का एक साथ प्रयोग सर्वप्रथम भरत ने किया है –''न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला'' भरत मुनि का यहां विद्या अथवा ज्ञान से भिन्न शिल्प एवं कला शब्दों से अलग–अलग क्या तात्पर्य है, यह स्पष्ट नहीं हैं । इसकी व्याख्या करते हुए अभिनव गुप्त ने 'कला गीतवाद्यादिका' लिखा है । सम्भवतः अभिनव गुप्त के सामने वात्स्यायन की कला सूचि रही होगी जिसका आरम्भ गीत एवं वाद्य से होता है । इस कला सूचि में चौथे स्थान पर आलेख्य एवं छत्तीसवें स्थान पर तक्षण कार्य का उल्लेख है । स्वयं भरत ने ही आलेख्य–विचक्षणा नारी को शिल्पकारिका कहा है । इस प्रकार कला एवं शिल्प के अर्थ का अन्तर्विरोध भी नाट्य शासत्र में मिल जाता है । तक्षण को परम्परानुसार शिल्प समझा जाता था। भरत में चार प्रकार के शिल्पी मान्य थे–स्थपति, सूत्रग्रही, वर्धकी तथा तक्षक। किन्तु कला के हेतु शिल्प एवं कलाकारों के हेतु शिल्पी शब्द का भी प्रयोग

होता था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में शिल्प एवं कला का अर्थ किसी लक्ष्मण–रेखा द्वारा विभाजित नहीं था। उसमें वे समस्त अर्थ घुले–मिले हुए थे जो आज ललित एंव उपयोगी कला के सन्दर्भ में समझे जाते हैं । कौशीतकी ब्राह्मण में नृत्य एवं गीत तक को शिल्प माना गया है।

कला विषयक प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करने वाली दूसरी मान्यता विद्या और उपविद्या से सम्बन्धित है । यहां के अधिकांशतः विचारकों ने कलाओं को उप विद्या माना है । काव्य को विद्याओं की श्रेणी में रखा है और कलाओं को काव्यांग अथवा काव्यरचना में सहायक साधन मात्र माना है विद्यायें प्रमुखतः चौदह मानी गयी हैं – चार वेद, छः वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिश) तथा चार शास्त्र (पुराण, आन्वीक्षकी, मीमांसा और स्म ति) कुछ विद्वानों ने विद्याओं की संख्या अट्ठारह अथवा बत्तीस भी मानी है । इनमें प्रमुख भेद यह है कि विद्यायें ज्ञानात्मक हैं और कलायें क्रियात्मक हैं । शुक्राचार्य ने विद्याओं को उक्ति प्रधान और कलाओं को क्रिया प्रधान माना है और कहा है कि कला की सर्जना गूंगे भी कर सकते हैं । शुक्राचार्य की इस कसौटी के आधार पर गायन को कला नहीं कहना चाहिए क्योंकि गूंगा व्यक्ति गा नहीं सकता । किन्तु यह सब जानते हैं कि गायन कला है । कौशीतकी का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है ।

आधुनिक युग में कलाओं को विद्या माना जाये अथवा उपविद्या यह प्रश्न विचारणीय है । इस प्रश्न का उत्तर दो प्रकार से दिया जा सकता है । एक तो यह कि भारतीय परम्परा में ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं जहां कला को विद्या माना गया है। दूसरा यह कि सभी कलाओं के दो पक्ष हैं । पहला पक्ष भाव अथवा विचार जगत से सम्बद्ध है जिसे ज्ञानात्मक कहा जा सकता है । दूसरा पक्ष कलाओं के भौतिक कलेवर एवं टेक्नीक से सम्बन्धित है जिसे क्रियात्मक कहा जा सकता है । इस प्रकार समस्त कलायें विद्या भी हैं और उप विद्या भी । काव्य को कलाओं में सम्मिलित किया जाये अथवा नहीं, इस प्रश्न को लेकर कतिपय आधुनिक भारतीय विद्वानों ने प्रायः यह मत व्यक्त किया है कि भारतीय दृष्टि से काव्य का स्थान कला में न होकर विद्या में है। इस दृष्टि से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जयंशकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, रामदरस मिश्र एवं गुलाब राय के नाम विशेष उल्लेख हैं । इनके मतानुसार कला सूचियों में प्रायः समस्यापूर्ति, व्याकरण विधि, काव्य, अलंकार आदि के जो नाम आये हैं वे तत्वतः काव्य से सम्बद्ध न होकर उक्ति, चमत्कार, अनुठेपन आदि से सम्बद्ध हैं । इसके उत्तर में एक तो यह कहा जा सकता है कि जिन कला–सूचियें में केवल ''काव्य'' शब्द आया है वहां यह कैसे सिद्ध किया जा सकेगा कि उसका अर्थ केवल समस्यापूर्ति अथवा चमत्कार प्रदर्शन मात्र है; रस–पूर्ण काव्य का सृजन नहीं है। दूसरे सम्पूर्ण संस्कृत, काव्य शास्त्र में इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं जहां काव्य एवं कलाओं को एक ही धरातल पर प्रतिश्ठित किया गया है वामन ने प्रबन्ध रचना में दशरुपक को इसी से श्रेष्ठ माना है क्योंकि कि उसमें चित्र की समस्त विशेषतायें होती हैं ।कलाओं की उपयोगिता को आधार मानते हुए उन्हें यूरोप में ललित एवं उपयोगी वर्गों में बांटा गया है । यूरोप में इसका जो आधार रहा है उसकी चर्चा यथा–स्थान की जायेगी। यहां केवल इतना अभीश्ट है कि भारतीय विचारधारा में इस प्रकार की मान्यता कभी भी नहीं रहीं ।

कला के साथ 'ललित' शब्द का प्रयोग हुआ अवश्य है पर वह दूसरे सन्दर्भ में है यह अस्पष्ट है ।'ललितास्तवराज' के अनुसार जब शिव को लीला के प्रयोजन की अनुभूति होती है तब महा शक्ति रूपा महामाया जगत की सृष्टि करती है । अतः शिव की लीलासखी होने के कारण महामाया को 'ललिता' कहा गया है और यह माना गया है कि इन्हीं ललिता के लालित्व से ललित कलाओं की सृष्टि हुई है । इस प्रकार जहां कहीं मानव–हृदय में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, सौन्दर्य–सृष्टि की प्रवृत्ति अथवा सौन्दयस्विादन का रस है, वहीं महामाया का यह ललित स्वरूप वर्तमान है। सौन्दर्य का आधार होने के कारण ही सम्भवतः कालीदास ने ''ललिते कला विद्यौ'' पद का प्रयोग किया है । किन्तु सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में चारुत्वपूर्ण कलाओं को उपयोगी कलाओं से पृथक करने वाला विभाजन कहीं भी उपलब्ध नहीं है । बंगाल प्रान्त में ललित एवं उपयोगी कला के हेतु क्रमशः 'चारु शिल्प' एवं 'कारु शिल्प' का जो प्रयोग मिलता है वह भी आधुनिक ही है । उसे संस्कृत की परम्परा में नहीं माना जा सकता क्यों कि जिन्हें बंगीय दृष्टि से चारु शिल्प कहेंगे वे ही संस्कृत में कारु शिल्प के रुप में उल्लिखित हैं।

सारांश यह है कि प्राचीन भारतीय दृष्टि से 'कला' शब्द अत्यन्त व्यापक है । लौकिक दृष्टि से प्रायः कारीगरी अथवा कौशलपूर्ण कार्य को कला कहा गया है कला और शिल्प शब्दों का प्रयोग समानार्थी भी रहा है ।

यूरोप में कला के हेतु आज 'आर्ट' शब्द प्रचलित है । इसका विकास प्राचीन लैटिन शब्द 'आर्स' से हुआ है । जिसका प्राचीन अर्थ साधारण शिल्प अथवा नैपुण्य विषेश है । इसे हम क्रैप्ट भी कह सकते हैं । इस प्रकार प्राचीन यूरोप में एक विशेष लक्ष्य की प्राप्ति हेतु धैर्यपूर्वक विकसित की गयी क्षमता एवं दक्षता को ही कला समझा जाता रहा । जैसे–जैसे इस लक्ष्य का विभाजन होता गया, कलाओं का भी विभाजन कर दिया गया । सौन्दर्यत्मक, लक्ष्य से सम्बन्धित कलाओं को 'फाईनआर्ट्स' नैतिक कलाओं को 'आर्ट्स आफ कण्डक्ट' और उपयोगी कलाओं को 'लिवरल आर्ट्स' कहा गया । अठारहवीं भाती तक आते आते ललित एवं उपयोगी कलाओं का विभाजन व्यापक रुप में प्रयुक्त होने लगा। उन्नीसवीं भाती में कला पर सौन्दर्य–बोध इतना हावी हुआ कि कला के साथ ललित शब्द के प्रयोग की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी गयी और सौन्दर्यानुभूति से रहित कलाओं को मृषा कलायें कहा जाने लगा। कला की प्रकृति सामाजिक है जबकि कल्पना मनुष्य का व्यक्तिगत गुण है । इस प्रकार कल्पना के सहारे कला की समीचीन व्याख्या नहीं हो सकती। कला एक प्रकार का सामाजिक स्वप्न है जिसके दृष्टा समाज के अनेक व्यक्ति हो सकते हैं । कला के द्वारा भावों अथवा विचारों का सम्प्रेशण किया जाता है अतः कला एक प्रकार की भाषा अथवा अभिव्यक्ति है । भाषा के तीन रूप है–विवरणात्मक, व्यवहारिक और भावपूर्ण। प्रथम प्रकार भी भाषा में ज्ञान संचित और प्रेषित किया जाता है । विज्ञान उसका उदाहरण है। दूसरे प्रकार की भाषा किसी प्रवचन अथवा लेष आदि में प्रयुक्त की जाती है जिसका लक्ष्य श्रोताओं को किसी कार्य के हेतु प्रेकिृति करना मात्र होता है। तीसरे प्रकार की भाषा संगीत अथवा काव्य की भाषा है जो किसी प्रकार की मनःस्थिति को उत्पन्न करने में सहायक होती है । कला में भावोत्पत्ति और विवरणात्मकता भाषा से कुछ विशेषता रहती है। काव्य में परम्परागत साधारण भाषा का प्रयोग होता है । इस प्रकार अनेक विद्वानों ने कला को अभिव्यक्ति माना है लक्ष्य–भेद से अभिव्यक्ति का मूल तत्त्व सुरक्षित रखते हुए भी विभिन्न विचारकों की कला सम्बन्धी परिभाषाओं में अन्तर हो गया है । क्रोंचे के लिए कला बाहय प्रभाव की अभिव्यक्ति है । हीगल के लिए वह अति भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है । टॉलस्टाय के लिए भावों को क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त करना कि उसे देखने या सुनने वाले में वही भाव जागृत हो जाये कला है । रास्किन के अनुसार प्रत्येक महान कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव के आहलाद की अभिव्यक्ति है । फ्रायड के अनुसार कला दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति है । कला को अभिव्यक्ति मानते हुए हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि उसमें कल्पना का प्रयोग अनिवार्य रुप से रहता है । वस्तुतः कला कल्पना भी है और अभिव्यक्ति भी । दोनों में कोई विरोध नहीं हैं। क्योंकि कला के द्वारा एक ऐसे स्वप्न–लोक की सृष्टि होती है जिसमें कल्पना की समस्त विशेषतायें उपस्थित रहती हैं। इसी को लक्षित करके शैली ने कहा है कि कला कल्पना की अभिव्यक्ति है । कला में आकार व्यक्ति और समाज, स्वप्न और अभिव्यक्ति, कल्पना और भाषा–दोनों का संयोग हो जाता है । इसे दृष्टिगत रखते हुए डॉ० श्याम सुन्दर दास ने कला की परिभाषा निम्न प्रकार से की है । जिस अभिव्यंजना में आन्तरिक भावों का प्रकाशन तथा कल्पना का योग रहता है वह कला है । इस प्रकार आधुनिक दृष्टि से कला को हम ऐसी क्रिया मान सकते हैं जिसमें कल्पना द्वारा सृजन होता है और जिसके द्वारा आन्तरिक अभिव्यक्ति अनिवार्य रुप से होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. 'कला' भोलानाथ तिवारी, सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृ०–15, 17 2. 'शिल्पानाम् कौशल प्रेक्षा'– क्षेमेन्द्र, कवि कण्ठाभरण) 3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद–पृ० 89 4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–प्राचीन भारता का कला विकास पृ० 15 5. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल–कला और संस्कृति पृ० 262 6. डॉ० कुमार विमल–कला विवेचन पृ० 44 7. गुलाब राय– सिद्वान्त और अध्ययन पृ० 58 8. जयदेव– चन्द्रलोक 6/3 9. हरद्वारीलाल–सौन्दर्यशास्त्र पृ० 124